International Journal of Education, Modern Management, Applied Science & Social Science (IJEMMASSS)
ISSN : 2581-9925, Impact Factor: 6.882, Volume 05, No. 03(I), July - September, 2023, pp. 105-109

स्वराज का ऐतिहासिक परिपेक्ष्य और गांधी का योगदान

दुर्गालाल यादव*

प्रस्तावना

भारतीय विचारों में राज्य को स्वराज्य के रूप में स्थानांतरित किया गया है। भारतीय परम्परा में स्वराज की व्याख्या अलग अलग अर्थ में की गई है। जो अनुशासन के रूपा में स्वतंत्रता की आवश्यकता के रूपा में जागृत और सुप्त की सीमा से बाहर होने व जन्म और पुर्नरजन्म के चक्र से मुक्त होने के रूपा में परन्तु साधारण राज्य कला के साहित्य में बहुत अधिक संसारिक अर्थ में प्रयुक्त होती हैं। शुक्रनीति में अपने आप पर पूर्ण नियंत्रण व दूसरों को पूर्ण स्वतंत्रता को स्वराज्य कहा गया है। हिन्द स्वराज की प्रस्तावना में गांधीजी ने तीन उद्देश्यों का उल्लेख किया है[1] –

- देश की सेवा करना
- सत्य की खोज करना
- उसके मुताबिक बतरने का क्या है?

स्वराज्य का वास्तविक अर्थ स्वनियंत्रण है जो व्यक्ति स्वयं पर नियंत्रण प्राप्त कर लेता है वही व्यक्ति नैतिकता का नियम समझ सकता है जिसमें छल नहीं होता सिर्फ वास्तविकता होती है। ऐसा व्यक्ति जिसने आत्म नियंत्रण प्राप्त कर लिया है वह अपने परिवार पड़ोसी व समाज के प्रति अपना कर्तव्य पूर्ण कर सकता है। स्वराज्य का अर्थ व्यक्तिगत स्तर पर आत्मनियंत्रण से किया जाता है जबकि उसी स्वराज का अर्थ राजनैतिक स्तर पर स्वराज्य व स्वशासन से किया जाता है। उसी स्वराज का अर्थ राजनैतिक स्तर पर स्वराज्य व स्वशासन से किया जाता हैं। परन्तु वह स्वराज्य जो राजनैतिक है वह भी व्यक्तिगत स्वराज पर आधारित हैं जो सदैव सत्य के लिए संघर्ष करता है ऐसे स्वराजु में राज्य एक आदर्श स्थिति में होता है। जिसमे सभी प्राणियों में समानता होती हैं। सभी धर्मों को समान महत्व दिया जाता है। जिसमें न कोई अमीर होता है न कोई गरीब इसमें हर व्यक्ति का अपने स्वयं पर शासन होता है और इसी नैतिकता के शासन के आधार पर वह कार्य करता है। उसके मन में न हिंसा की भावना होती हैं और न भेदभाव की ऐसा अपने मन पर शासन ही वास्तव में स्वराज कहा गया है। इसमें शासक को अपनी शक्ति प्रयोग में नहीं लानी पड़ती क्योंकि प्रजा पहले से ही स्वनियंत्रित होती हैं।

गांधीजी के लिए स्वराज का अर्थ केवल राजनैतिक सत्ता का परिवर्तन नहीं था बल्कि विदेशी सत्ता को हटाकर देश में ऐसी व्यवस्था स्थापित करना था जिसमें छोट–बड़े, अमीर–गरीब सभी समान है। उनका स्वराज समानता पर आधारित था। वे स्वराज्य को रामराज्य की ही सज्ञा देते थे परन्तु कुछ लोगों द्वारा यह संशय व्यक्त किया गया था कि गाँधी का स्वराज्य एक हिन्दू राज्य होगा। इसी कारण वे इसे रामराज्य कहते है लेकिन वास्तविकता में गाँधी का रामराज्य शब्द एक आदर्श राज्य को दी गई संज्ञा मात्र थी।

गाँधीजी भारत में ऐसा प्रजातंत्र चाहते थे जिसका आदर्श रामराज्य हो। जिसमें राजा व प्रजा, राम व रहीम में कोई भेद न हो। वे ब्रिटिश पालियामेन्ट जैसा राज्य कदापि नहीं चाहते थे जिसकी निन्दा करते हुए उन्होंने वैश्या शब्द कहे थे। उनके स्वराज में तो सत्ता का लेशमात्र भी लालच नहीं था बल्कि सेवा भावना थी।[2]

* शोधार्थी, एम.फिल., गांधी अध्ययन केंद्र, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, राजस्थान।

[1] अवस्थी एण्ड अवस्थी, आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनैतिक चिन्तन, रिसर्च प्रकाषन, जयपुर, पृष्ठ 156, 367, 1990।

[2] रावत ज्ञानेन्द्र, महात्मा गाँधी और हिन्द स्वराज, श्रीनटराज प्रकाषन, पृष्ठ 25, 2007।

गाँधी जी ने स्वराज की जो कल्पना की थी उसका प्रमुख आधार सत्य अहिंसा, धर्म, स्वदेशी, सत्याग्रह, अपरिग्रह, अस्तेय आदि की भावना पर आधारित था। इसी कारण उनका स्वराज अहिंसक, धर्मनिष्ठ, न्यायप्रिय व समानता का रूपा लिए हुआ था। हिंसा पर आधारित स्वराज को वे स्वराज मानने से इंकार करते थे। उनके स्वराज में असमानता नहीं थी। गांधी का स्वराज केवल राजनैतिक सत्ता तक ही सीमित नहीं थी उनका स्वराज्य सामाजिक व आर्थिक पक्षों में भी था। राजनैतिक स्तर पर स्वराज में गाँधी एक ऐसे ग्राम स्वराज्य की कल्पना करते थे जिसमें प्रत्येक गाँव व उसका प्रत्येक व्यक्ति आत्म निर्भर हो। इस प्रकार पूरा देश छोटे छोटे आत्म निर्भर गावो का समूह हो।

गाँधी स्वराज के सामाजिक पक्ष में समाज में सुधार पर जोर देते थे। उन्होंने अस्पृश्यता को अपने स्वराज में दूर करने का प्रयत्न किया उनकेलिए अस्पृश्यता समानता की भावना में अवरोधक थी। मद्यनिषेध को लागू करने पर उन्होंने जोर दिया जो कि उनके स्वराज प्राप्त करने के बाद प्रथम कार्य था। नारी की समाज मे स्थिति को गाँधी ने बेहतर तरीके से समझा तथा उन्हें पुरुषों के समान अधिकार देने का पक्ष लिया। गाँधी ने स्वराज को चलाने के लिए शिक्षा की आवश्कता के महत्व पर बल दिया तथा इसके लिए एक नई शिक्षा पद्धति दी जो गाँधी की दूर दृष्टि की परिचायक थी।

गाँधीजी ने स्वराज की जो अवधारणायें रखी उसका आधार गाँधी जी के चिन्तन की कुछ विशेषताओं पर टिका था। उनका चिन्तन स्वदेशी, सत्य, अहिंसा, सत्याग्रह, ट्रस्टीशिप, धर्म आदि पर निर्भर था गाँधी न सत्य पर आधारित वाणी, सत्य पर ही आधरित कार्यों को ही सदा महत्व दिया। उनके अनुसार सत्य के अभाव में हम किसी भी नियम का शुद्ध पालन नहीं कर सकते। सत्य के शुद्ध अर्थ में वे सत्य व ईश्वर को एक ही मानते थे।

उनका यह विचार था कि सत्य के पालन से हमें यह साहिष्णुता प्राप्त होती है। जिससे हम खुले दिमाग से दूसरों की बात सुन सकते हैं। वे सत्य पालन, मन, वचन व कर्म से मानते थे तथा इसी प्रकार अहिसा का भी पालन मन, वचन व कर्म से करना आवश्यक कहते थे। उन्होंने अहिंसा का जो सिद्धान्त दिया उसमें वे बाह्य रूपा से अहिंसा व साथ ही मन से भी बैर भाव का समापन चाहते थे। उनका यह मानना भी ठीक ही प्रतीत होता है कि मन की अहिंसा तब ही आएगी जब हम दूसरे व्यक्ति की भावना को सह्रदयता, सहानुभूति व सम्मान से देखे।

भारत में उदारवादी, उग्रवादी और साम्यवादी सभी विचारको ने राजनीतिक और प्रशासनिक स्वरूपा में स्वतंत्रता की मांग की थी उन्होंने आर्थिक क्षेत्र में भी स्वतंत्रता पर बल दिया। उन्होंने जिस स्वतंत्रता की बात की थी वह बहुत कुछ गांधी की स्वराज की धारणा से मिलती जुलती थी उन्होंने माना कि भारतीय राजनीतिक दृष्टि से पूर्व ही मानसिक दृष्टि से परास्त हो चुके थे और जब तक इस मानसिक परतंत्रता से उन्हें छुटकारा नहीं दिलाया जाएगा तब तक आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक परतंत्रता के विनाश का मार्ग साफ नहीं होगा। उन्होंने एक खण्ड, एक अखण्ड, स्वतंत्र, स्वाधीन और निर्भय राज्य की आवश्यकता बताई। स्वराज का उद्देश्य एक स्वस्थ समाज और उसके प्रतिनिधि सेवक के रूप में स्वस्थ राज्य का आधार प्रस्तुत करना है। गाँधीजी ने सत्ता के स्वरूपा, सत्य और उसकी साधना समकालीन जीवन में परिव्याप्त गुण दोष, समकालीन विश्व में भारत उसकी साधना, समकालीन जीवन में परिव्याप्त गुण दोष, समकालीन विश्व में भारत की भूमिका और भारत का स्वधर्म तथा राज्य और समाज में आपसी संबंधों, समाज के गर्म तथा विस्तार की गहरी मीमांसा स्वराज में प्रस्तुत की है।

1885 से 1905 तक भारतीय लोगों पर स्वशासन के विचारों की छाप दिखायी देती हैं। अतः इस युग को उदारवाद का युग समझा जाए तो शायद गलत नहीं है स्वशासन की मांग मुख्यतः दादाभाई नौराजी, फिरोजशाह मेहता, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, गोपाल कृष्ण गोखले, महादेव गोविन्द सनाड़े द्वारा की जाती रही। हालांकि स्वराज का प्राथमिक स्वरूपा इन्हीं नेताओं के स्वशासन की मांग से उपजा था परन्तु फिर भी उनके विचारों में कुछ समझौतावादी रूख जरूर नजर आता है।[1]

[1] पंकज रामेश्वर मित्र, गाँधी दर्शन का मौलिक सूत्र, स्वराज प्रकाषन, दिल्ली, पृष्ठ 66।

19 वीं शताब्दी के अंतिम चरण और 20वीं शताब्दी के प्रारम्भ में अनेक ऐसी निराशाजनक घटनाएं घटी जिससे स्वशासन के विचार जो उदारवादी सोच का परिणाम थे वे धीरे धीरे उग्रवादी विचार वाले स्वराज की सोच में परिवर्तित होने लगे। यह समय स्वशासन व स्वराज के विचारों में मतभेदों का था। दादाभाई नौरोजी जो प्रारम्भ में ब्रिटिश शासन द्वारा भारतीयों के लिए सहयोग की अपेक्षा रखते थे बाद में इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि स्वशासन और स्वराज्य का अधिकार प्राप्त किए बिना भारत राष्ट्रीय महानता को प्राप्त नहीं कर सकता।

प्राचीन भारतीय राजनैतिक चिन्तन में आत्म शासन विचार के सूत्र मिलते हैं। उन दिनों इस शब्द को राज व्यवस्था के सदस्यों की सामूहिकता के रूपा में प्रयोग टिकता के रूप में। किया गया और यह प्रत्येक मानव जाति के नैतिक विकास के रूपा में भी आत्मशासन से जुड़ा था। किसी विशिष्ट के या व्यक्तियों की सामान्य तौर पर आत्म उन्नति और नैतिक परिपक्वता के स्तर के पैमाने को दर्शाने के रूपा में एक राजव्यवस्था की परिपक्वता व विकास को देखा गया है। ऋग्वेद अर्थववेद में भी गाँव की विभिन्न समस्याओं पर ग्राम सभा बुलाकर उन पर निर्णय करने का जिक्र है महाभारत काल में भी पंचायतो और पंचों पर महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व था और उनके कामकाज का प्रभाव राज्य के प्रशासन पर पड़ता था। शांतिपर्व में गांव की पंचायतों द्वारा फौजदारी मुकदमें सुनने का उल्लेख आता हैं।

रामायणकालीन समय में राजव्यवस्था एक आदर्श मानी जाती थी। यह भारत की आर्य संस्कृति का एक आदर्श ग्रंथ माना जाता हैं इसमें प्राचीन वैदिक आर्य सभ्यता का जो सजीव चित्र है वह नितान्त गौरवपूर्ण है। उस समय मंत्री सभा आदि सभाओं की व्यवस्था थी व राजा कोई भी काम बिना इस सभा की मंत्रणा किये नहीं कर सकता था।[1] रामायण के विस्तृत अध्ययन से राजसत्ता के विषय में यह बात स्पष्ट हो जाती है कि वह निरंकुश या स्वेच्छाचारिणी व्यवस्था नहीं थी अपितु सभाओं, संघो और जनपदों का उस पर पूरा नियंत्रण रहता था। सारे राज्य मे गौरव जनपद संस्थाएं वर्तमान समय के नगर निगम ग्राम समितियों के समान ही स्थान स्थान पर बनी थी जिनका शासन कार्यों में पूरा पूरा भाग तथा उत्तरदायित्व था।

पाणिनीकाल में शासन के दो प्रकार थे। एक राजाधीन जनपद और दूसरे गणधीन जनपद थे। ये जनपद अनेक शासन पद्धतियों का प्रयोग कर रहे थे। राजाधीन जनपद में एक राज शासन प्रचलित था। वहां के राजा अपनी मंत्री परिषद् के साथ शासन का काम चलाते थे। दूसरे जनपदगण या संघ कहलाते थे। इन गुणों में शासन की विविध पद्धतियों प्रचलित थी।

शुक्राचार्य कि राजनीतिक व्यवस्था के समय भारत में वास्तविक प्रजातंत्र राज्य थे। शुक्राचार्य के अनुसार प्रजातंत्र पद्धति में स्थानीय स्वायत संस्थाओं अर्थात् नगरपालिकाओं नगरनिगम सहकारी समितियों व्यापारिक संघो स्थानीय गणों ग्राम संघो आदि का महत्वपूर्ण स्थान है। ये संस्थाएं ही वास्तविक जनतंत्र का मूल आधार थी। जनतंत्र शब्द का अर्थ ही है जनज न का शासन जो स्थानीय स्वायत संस्थाओं के बिना असम्भव है। इसलिए पंचायत राज्य के बिना जनतंत्र का कोई मूल्य नहीं माना जाता हैं। आचार्य शुक्र ने इसी कारण स्थानीय स्वशासन को बड़ा महत्व दिया। इस विषय में उनके निर्देश और विचार वर्तमान जनतंत्रीय शासन पद्धति में प्रमाणिक माने जा सकते हैं।

बौद्धकाल में लिच्छवी, मल्ल और शाक्य राज्यों में पंचायती राज की व्यवस्था थी गांव के स्थानीय नामले गांव वालों की सभा में तय होते थे। खेतों की सिचाई का गांव के बगीचें तथा खेती के लिए भूमि आदि का प्रबंध सामूहिक रूप से और कई मामलों में सहकारी आधार पर होता था। ग्राम पंचायते राज्य के प्रशासन का प्रभावशाली अंग थी। मौर्य तथा गुप्तकाल में भी पंचायतों के स्वरूपा का जिक्र आता हैं। अपराधियों के दण्ड का निर्णय करने तथा अन्य धार्मिक मामलों पर विचार करने के लिए पंचायते इकट्ठी की जाती थी। इन संस्थाओं की सभा में घर के बुजुर्ग या प्रमुख सदस्यों के रूपा में सम्मिलित होते थे।

---

[1] प्रभाकर विष्णु, क्या है स्वराज, नेषनल बुक ट्रस्ट, दिल्ली, पृष्ठ 192।

वर्तमान राजनीतिक में जिस स्वायत्त शासन की अत्यधिक चर्चा है। जो आज पंचायती राज अथवा नगर समितियों द्वारा स्थापित किया जाता है। कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में उसका निर्देश किया है। उसके समय में भी एक केन्द्रीय शासन के अन्तर्गत प्रजा को स्वायत्त शासन प्राप्त था। प्रजा उस समय भी अनेक अधिकारों का उपयोग करती थी।

दक्षिण भारत में चोल राजाओं के राज्यकाल में ग्राम सभा का चुनाव जनता द्वारा होता था और भिन्न भिन्न विषयों के लिए भिन्न भिन्न उपसमितियों का निर्माण किया जात था। इस प्रकार ग्राम के स्वास्थ्य, उद्योग शिक्षा, न्याय प्रबंध तथा कृषि आदि कार्यों की देखरेख इन उपसमितियों के द्वारा होती थी। चीनी यात्री फाह्यान तत्कालीन ग्राम संगठन से बड़ा प्रभावित हुआ था उसने अपने यात्रा वृतान्त में लिखा ग्रामों का संगठन आर्थिक तथा रक्षात्मक स्वावलंबन के विचारों पर आधारित होता हैं। यह ग्राम राज्य का ही प्रत्यक्ष फल हैं।[1] वे लोग स्वेच्छा से बंधुवा के नियमों का पालन करते हैं और बड़े शांतिप्रिय व उन्नतिशील हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि कौटिल्य के ग्राम राज्य, स्वायत्त शासन एवं नागरिक स्वतंत्रता का पूर्ण समर्थन किया।

मुगलकालीन भारतीय समय में शासकों की मूल पद्धति में इन मुसलमान शासकों ने कोई परिवर्तन नहीं किया। भारत में उस समय ग्राम में जो पंचायती प्रथा प्रचलित थी। खासतौर से उसमें किसी तरह का परिवर्तन नहीं किया था। यद्यपि मुसलमान बादशाहों ने इन पंचायतों के क्षेत्र तथा अधिकार में किसी प्रकार की वृद्धि नहीं की, फिर भी उन्हें कम करने या नष्ट करने का प्रयास नहीं किया। इसके विपरित यह ऐतिहासिक सच्चाई है कि शासक ने जहाँ तक बन पड़ा अपने हित में इन पंचायतों का उपयोग बराबर किया इनसे खूब फायदा उठाया। इसलिए भारत में पंचायती प्रथा पहले के समान ही चलती रही और गाँवो का संगठन भी यथापूर्व अवस्थित रहा। कहने का भाव यह है कि मुगल शासन के समय भारत के ग्रामों ग्रामीण कृषको व ग्राम पंचायतों की पूरी हिफाजत का प्रबंध था। राजा का कोई कर्मचारी ग्रामीण समाज को सता नही सकता था और न उनसे रिश्वत आदि ले सकता था।

भारत वर्ष पर राज्य करने वाले विभिन्न राजवंशों के प्रशासन में भी पंचायतों का चलन किसी न किसी रूपा में चलता रहा यद्यपि राजवंश की नीति प्रणाली तथा प्रभाव के अनुसार पंचायतों की शक्ति व प्रभाव में भी हेरफेर होता रहा।[2] मुगल काल में इन संस्थाओं पर बहुत प्रभाव पडा और मुगल शासको द्वारा शासन शक्ति को अधिक केन्द्रीय भूत करने के कारण इनका प्रभाव कम हो गया और स्वाभाविक रूपा से इनकी सत्ता कम स्वीकार की जाने लगी। शताब्दियों तक ग्राम शासन की इन इकाईयों का सत्ता तथा शक्ति का कानून के अनुसार वेध स्वरूपा नहीं रहा लेकिन मुगल तथा अंग्रेजी शासन में भी पंचायतो द्वारा गांव के विभिन्न कामकाज रूप से इनकी ताकम स्वीकार की जाने लगी। शताब्दियों तक ग्राम शासन की इन इकाईयों का सत्ता तथा शक्ति का कानून के अनुसार वैध स्वरूपा नहीं रहा लेकिन मुगल तथा अंग्रेजी शासन में भी पंचायतों द्वारा गांव के विभिन्न कामकाज सम्पन्न करते रहने की परम्परा जाती रही।

भारत में चली आ रही सहत्रों वर्षों की इन ग्राम पंचायतों पर सर्वप्रथम हमला हुआ जब बंगाल में मीर जाफर और मीर कासिम के शासन के समय ईस्ट इंडिया कंपनी की भी व्यापारी लूट और खुले आक्रमण व डाकाजनी का दौर शुरू हुआ। आक्रमण इन ग्राम पंचायतों पर सन् 1775 में हुआ जब वारेन के शासन समय में इंग्लिशतान के अंदर रेग्यूलेशन एक्ट नाम का कानून पास किया था। भारत की न्याय पंचायतों के विषय में टारेन्स लिखता है कि भारत की इन ग्राम पंचायतों में सबसे विचित्र व्यवस्था जुरियो की थी दीवानी और हर मुकदमे के लिए अलग अलग प्यूरी थी अस्थायी पंच चुने जाते थे। जिनका निर्णय सबको मान्य होता था। इन पंचों का चुनाव जनता द्वारा किया जाता था। ऊँचे से ऊँचे चरित्र साहस व त्याग वाले लोग इसके मुखिया चुने जाते थे।

---

[1] किशोर गिरिराज, हिन्द स्वराज गाँधी का शब्द अवतार, सस्ता साहित्य मंडल, दिल्ली, पृष्ठ 83।
[2] जॉली सुरजीत कौर, गांधी एक अध्ययन, कोंसेप्ट पब्लिकेषन, दिल्ली, पृष्ठ 328।

अंग्रेजी व्यवस्था के बदनाम होने पर सन् 1882 में वायसराय लार्डरिपन ने सबसे पहले स्थानीय स्वायत्त शासन का सामना किया परन्तु वह सफलता प्राप्त न कर सका। 1987 में में एक सैंगल कमीशन सत्ता के विकेन्द्रीकरण के विषय में विचार करने के लिए नियुक्त किया गया। इस कमीशन ने अपनी रिपोर्ट सरकार के सामने प्रस्तुत की।

19वीं शताब्दी के पूर्वाद्ध तक पंचायतो के काम में कोई उल्लेखनीय प्रगति नहीं हो पायी। सारा का सारा ग्राम विकास कार्य ठप्प हो गया। सरकार ने भी इधर कोई ध्यान नहीं दिया। 1929 के माण्टेक्यू चेम्सफोर्ड सुधारों के कारण गर्वनमेन्ट आफै इण्डिया एक्ट पास हुआ फिर पंचायतों की ओर ध्यान दिया गया। ग्राम सुधार के कार्य आरम्भ किये गये। परन्तु यह काम अबकी बार पंचायतो को न देकर जिला अधिकारियों को दिया गया। इसी बीच भारत की महान संस्था राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) ने भी महात्मा गांधी के आदेशानुसार गामोत्थान का कार्य विशेष रूप से अपने हाथ में लिया।

गांधीजी पंचायती राज के बारे में लिखते हैं हर गांव में पंचायत राज्य होगा उसके पास पूरी सत्ता होगी। इसका मतलब यह है कि हर गांव को अपने पैरो पर खड़ा करना होगा। अपनी जरूरते पूरी करनी होगी ताकि वह अपना कारोवार खुद खड़ा करना होगा। अपनी जरूरते पूरी करनी होगी ताकि वह अपना कारोबार खुद खड़ा करना होगा। अपनी जरूरते पूरी करनी होगी ताकि वह अपना कारोबार खुद चला सकें, यहाँ तक कि वह सारी दुनिया के खिलाफ अपनी रक्षा आप कर सके। यही ग्राम राज पंचायत राज की मेरी कल्पना हैं।

20वीं शताब्दी के पूर्वाद्ध में भारत में ही नहीं अपितु संपूर्ण विश्व में नवीन आदर्शों का उदय हुआ । इनका लक्ष्य गरीबी, कर उन्मूलन, जनता के जीवन स्तर में सुधार करना तथा एक ऐसे शक्तिशाली प्रशासनिक माध्यम का विकास करना था जिसकी छाया में समुदाय के हित सुरक्षित रह सके। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत कृ षि, पशुपालन, सिंचाई, सहकारिता, सार्वजनिक स्वास्थ्य, शिक्षा, संचार साधन, ग्रामोद्योग, पंचायत और स्वायत्त शासन को शामिल किया गया।

देश में राष्ट्रीय आदोलन के विकास के साथ स्वराज की धारणा का विकसित होना सर्वथा स्वाभाविक था। स्वराज की प्राप्ति के लिए विदेशी शासन से काफी लंबा संघर्ष रहा। इस संघर्ष में अन्य विचारधाराओं के साथ ही साथ स्वराज्य की धारणा भी रही हो काफी महत्वपूर्ण भी जिससे जनता में एक नया जोश पैदा हुआ।

आत्मशासन या स्वराज की अवधारणा का विकास भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान हुआ। गाँधी ने अपनी पुस्तक हिन्द स्वराज (1909) में बल दिया कि स्वराज अंग्रेजी के बिना अंग्रेजी शासन से कही अधिक है, यह बाघ के स्वभाव को बदलना है न कि बाघ का बदलना।[1]

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. अवस्थी एण्ड अवस्थी, आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनैतिक चिन्तन, रिसर्च प्रकाशन, जयपुर, पृष्ठ 156, 1990।
2. रावत ज्ञानेन्द्र, महात्मा गाँधी और हिन्द स्वराज, श्रीनटराज प्रकाशन, पृष्ठ 25, 2007।
3. पंकज रामेश्वर मित्र, गाँधी दर्शन का मौलिक सूत्र, स्वराज प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ 66।
4. प्रभाकर विष्णु, क्या है स्वराज, नेशनल बुक ट्रस्ट, दिल्ली, पृष्ठ 192।
5. किशोर गिरिराज, हिन्द स्वराज गाँधी का शब्द अवतार, सस्ता साहित्य मंडल, दिल्ली, पृष्ठ 83।
6. जॉली सुरजीत कौर, गांधी एक अध्ययन, कोंसेप्ट पब्लिकेशन, दिल्ली, पृष्ठ 328।
7. गांधी महात्मा, हिन्द स्वराज, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, पृष्ठ 6।

❖◆❖

[1] गांधी महात्मा, हिन्द स्वराज, नवजीवन प्रकाषन, अहमदाबाद, पृष्ठ 6।